E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2023; 5(8): 58-63
Received: 01-06-2023
Accepted: 07-07-2023

डॉ. अनिल कुमार
सहायक प्रोफेसर संस्कृत विभाग, कमला नेहरू महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय), नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अनिल कुमार
सहायक प्रोफेसर संस्कृत विभाग, कमला नेहरू महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय), नई दिल्ली, भारत

भारतीय ज्ञान परंपरा में मन की संकल्पना

डॉ. अनिल कुमार

DOI: https://doi.org/10.33545/27068919.2023.v5.i8a.1074

प्रस्तावना

भारतीय परम्परा में मनोविज्ञान दार्शनिक चिन्तन से पृथक् रूपेण नई विधा के रूपा में विकसित नहीं हुआ क्योंकि यहाँ की दैनिक दिनचर्या के क्रियाकलापों का विधान इस प्रकार से निर्मित है कि जो प्रातःकालीन वंदना से शुरू होकर संध्याकालीन वंदना तक मानिसक शान्तिप्रदायक है अर्थात् मनोविज्ञान दार्शनिक चिन्तन के अतिरिक्त धर्म व लोगों के व्यवहारिक जीवन में व्याप्त था। भारतीय परम्परा में मन की मूलभूत संकल्पना तथा इसके अध्ययन से मानव जाति के कल्याण हेतु आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति का भी विशद् विश्लेषण भी प्राप्त होता है साथ ही इस तथ्य का भी स्पष्टतः उल्लेख है कि मन के बिना प्राणियों में कोई भी व्यवहार नहीं हो सकता।[1]

भारतीय चिन्तन परम्परा समग्र मन, चित्त उसके साधनों, मस्तिष्क, नाड़ियों, कुण्डलिनी, चक्र आदि सहित मानव की अनुभूतियों तथा व्यवहारों का चेतन सापेक्ष गत्यात्मक ज्ञान प्राप्त करने के साधन अष्टांग योग व चित्त को विकसित करके अद्भूत शक्तियों तथा विवेक ज्ञान प्राप्त करने का क्रियात्मक विज्ञान है।[2] पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक कैनन के अनुसार भारत एवं तिब्बत मनोविज्ञान के क्षेत्र में तथा मन की कार्यस्थिति के बारे में पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक फ्रायड, एडलर, जुंग आदि की अपेक्षा अधिक जानकारी रखते हैं। भारतीय परम्परा आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में अधिक सूक्ष्म अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है।[3]

वैदिक दर्शन में मन

वैदिक साहित्य ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों व उपनिषद के ऋषियों के चिंतन में मन व मनस् स्वास्थ्य के स्वरूप पर प्रारम्भिक स्तरीय सर्वांग सुन्दर

[1] यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते। यजु. 34.3

[2] योग मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृ. 6

[3] जीवात्मा, प. गंगा प्रसाद उपाध्याय, पृ. 348

विवेचन प्राप्त होता है। जहाँ मनुष्य की समस्त चेतन क्रियाओं का कारण मनस् तत्त्व को स्वीकार किया गया है तथा मन की सत्ता को आत्मा, बुद्धि, इन्द्रियों व शरीर से भिन्न स्वीकार की गयी है। वेद में मन शब्द का प्रयोग उस समस्त शरीरस्थ उपकरण के अर्थ में हुआ है जो सम्पूर्ण शरीर को नियंत्रित करता है जिसको बाद के दर्शनकारों ने अन्तःकरण के रूप में स्वीकार किया है। वेदों में मनोविज्ञान सम्बन्धित विकसित रूप ब्राह्मणग्रंथो व उपनिषदों में प्राप्त होता है जहाँ मन का शास्त्रीय स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। जिसमें मन के गुण, धर्म, स्वरूप व कार्यों की समीक्षा है। ऋग्वेद में मन को हृदय का निर्देशक,[4] त्रिकालदर्शी[5] और ज्ञान व कर्म के साधन[6] के रूप में विश्लेषित किया गया है। यजुर्वेद के 34वें अध्याय में 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' वाले मंत्रो में मन के सम्बन्ध में व्यापकता से चिन्तन किया गया है। जहाँ स्वप्न व जाग्रत अवस्था में भी मन की गतिशीलता का उल्लेख है। यह मन मानव की प्रेरक शक्ति, अमर ज्योति, त्रिकाल व ज्ञान का अधिष्ठाता, मानव का नियन्ता व तीव्र गतिवाला है जिसके बिना कोई कार्य नहीं किया जा सकता।[7] अथर्ववेद में प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया के सहायक तत्त्वों को समझाया गया है जिसमें संवेदनाओं को पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण करती है और मन के द्वारा इनका प्रत्यक्षीकरण होता है।[8] मन वशीकरण का साधन है तथा दूसरे के मन को आकृष्ट करके वश में करा लेता है।[9] मन के द्वारा तेजस्विता, समृद्धि और शारीरिक नीरोगता आदि की प्राप्ति होती है।[10] अतः मन की पवित्रता शारीरिक मल और विक्षेपों को दूर करती है।

ब्राह्मण ग्रंथो में मन को ब्रह्म कहा गया है[11] जो सर्वशक्तिमान है[12], मन सृष्टि का कर्ता है, मन की शक्ति अनन्त है, उसे अनन्त[13] व अपरिमित कहा गया है।[14] मन और वाणी का असाधारण सम्बन्ध है जो मन सोचता है वाणी उसी को प्रकट करती है।[15] मन ही आत्मा की प्रतिष्ठा है अर्थात् मन ही आत्मा के सब कार्य करता है।[16] शतपथ ब्राह्मण में काम, क्रोध, संकल्प, विचिकित्सा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, ह्री, धी, आदि की गणना मन के विभिन्न रूपों में की गयी है।[17] उपनिषदों में मन पर सरल, वैज्ञानिक एवं व्यवहारिकतापूर्ण दृष्टिकोण से चिंतन किया गया है।

उपनिषदों के ऋषियों की मन के सम्बन्ध में मुख्य अवधारणा यह थी कि 'मन एक सूक्ष्म पदार्थ है'।[18] उपनिषदों के ऋषियों का मुख्य उद्देश्य ब्रह्म का रहस्योद्घाटन करना था, अतः वे तत्त्वान्वेषक साधकों को मन एवं इसकी सूक्ष्म प्रकृति के विषय में सचेत करते हैं और इसके मूल स्रोत मन्त्र को जानने का उपदेश देते है। केनोपनिषद् के अनुसार मन की

---

[4] आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ, एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।
मनश्चन्मे हृद आ प्रत्यवोचद्, अचिक्रद्र् शिशुमन्तः सखायः॥ ऋग्. 8.100.5

[5] यत् ते भूतं च भव्यं च, मनो जगाम दूरकम्।
तत् त आ वर्तयामसि-इह क्षयाय जीवसे ॥ ऋग्. 10.58.12

[6] भद्रं नो अपि वातय, मनो दक्षमुत क्रतुम्।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे, रणन् गावो न यवसे विवक्षसे ॥ ऋग्. 10.25.1

[7] यजु. 34.1-6

[8] इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि में हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ अथर्व. 19.9.5

[9] अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि, मम चित्तमनु चित्तेभिरेत।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि, मम यातमनुवर्त्मान एत॥ अथर्व. 3.8.6, 6.94.2

[10] सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा संशिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद् विलिष्टम् ॥ अथर्व. 6.53.3

[11] मनो ब्रह्म। गो. ब्रा. 1.2.11

[12] मन एव सर्वम्। गो. ब्रा. 1.5.15

[13] अनन्तं वै मनः। शत. ब्रा. 14.6.1.11

[14] मनो वा अपरिमितम्। कौषि. ब्रा. 26.3

[15] यद् हि मनसाऽभिगच्छति, तद् वाचा वदति । तांडय. ब्रा. 11.1.3

[16] मनसि हि अयमात्मा प्रतिष्ठितः । शत. ब्रा. 6.7.1.21

[17] कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिः ह्रीः धीः भीः इत्येतत् सर्वं मन एव । शत. ब्रा. 14.4.3.9

[18] S. Chennakesavan, Concept of Mind in Indian Philosophy, p. 3

क्रियाशीलता व चञ्चलता का आधार आत्मा (ब्रह्म) को स्वीकार किया गया हैं तथा ब्रह्म ज्ञान को जानने पर बल दिया गया है।[19] कौषितकी उपनिषद् के अनुसार आत्मा, प्रज्ञा (परिष्कृत बुद्धि) के रूप में मन में प्रतिबिंबित होता है।

ऐतरेय उपनिषद् में ह्रदय को ही मन कहा गया है तथा चेतनता, प्रभुता, विज्ञान, मेंधा, दृष्टि, धृति मति, मनीषा जूति (रोगादिजनित दुःख), स्मृति, संकल्प, क्रतु, प्राण, काम और वश ये सभी प्रज्ञा के नाम है।[20] छान्दोग्योपनिषद् में मन की संरचना व भौतिकता के विषय में एक नूतन विचार प्रतिपादित किया गया है कि मन का निर्माण मनुष्य के द्वारा खाये गये अन्न के सूक्ष्मतम अंश (सारतत्व) से होता है।[21] शुद्ध व सात्विक आहार से निर्मित मन न केवल इस जीवनकाल के घटनाक्रम को अपितु पुनर्जन्म से सम्बद्ध घटनाओं का भी स्मरण रहता है।[22] बृहदारण्यकोपनिषद् में मन का स्वरूप व कार्य पर प्रकाश डाला गया है- मन इन्द्रियों का अधिपति है और जब ये इन्द्रियां मन से संयुक्त होती है, तभी उन विषयों का ज्ञान होता है। मन न ही दृश्य है और न ही श्रव्य। मन के कारण अन्य वस्तुओं को सुना जाता है व देखा जाता है।[23] तथा स्वयं चेतना रूप है, अतः इसे शरीर में आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।[24]

कठोपनिषद में मन को आत्मा द्वारा निर्देशित अन्तरेन्द्रिय बताया गया है जो दूसरी इन्द्रियों को निर्देशित करता है।[25] मन के अनुरूप ही व्यक्ति का स्वभाव व व्यक्तित्व विकसित होता है, अतः मनुष्य को मनोमयी कहा गया है। मन ही परमात्मा की प्राप्ति का साधन है।[26] अमृतबिन्दुपनिषद् में मन को ही बन्धन व मोक्ष मुख्य कारण स्वीकार किया गया है।[27] इस प्रकार वैदिक साहित्य ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों व उपनिषद् के ऋषियों के चिंतन में मन व मनस् स्वास्थ्य के स्वरूप पर प्रारम्भिक स्तरीय सर्वांग सुन्दर विवेचन प्राप्त होता है। जहाँ मनुष्य की समस्त चेतन क्रियाओं का कारण मनस् तत्त्व को स्वीकार किया गया है तथा मन की सत्ता को आत्मा, बुद्धि, इन्द्रियों व शरीर से भिन्न स्वीकार की गयी है।[28] उपनिषदों में विवेचित्त मन की यह अवधारणा सूत्रग्रन्थों में ओर अधिक तार्किक, सूक्ष्म एवं विस्तुत व्याख्या पाती है।

बौद्ध दर्शन में मन

बौद्ध दार्शनिक परम्परा में विज्ञान, चित्त, विज्ञप्ति तथा मन एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।[29] विज्ञान शब्द के यहां तीन पर्याय बतलाये गये है - १. चित्त २. मन एवं ३. विज्ञप्ति।[30] ये तीनों एक ही पर्याय अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। लंकावतारसूत्र के अनुसार “अन्त: करण चेतन क्रिया से सम्बन्ध होने के कारण चित्त कहलाता है, मनन क्रिया करने पर मन कहलाता है एवं यह किसी विषय का ज्ञान ग्रहण करने में कारणभूत होने से यह

---

[19] यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विधि नेदं यदिदमुपासते ।। केनो. 1.5

[20] यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् । संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेंधा दृष्टिः धृतिः मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामोवश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ।। ऐत. उप. 3.1.2

[21] अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति सो मधयमस्तन्मांसं यऽनिष्ठः स्तन्मनः।। छान्दो. 6.6.5

[22] आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ धृवा स्मृतिः स्मृतिलभ्ये सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ।। छान्दो. 7.2.6.2

[23] अन्यत्र मनाः अभूवं नादर्शमन्यत्र मना अभूवं नाक्षोपं मनसा एव पश्यति मनसा शृणोति ।। बृह. 1.5.3

[24] मन एवास्य आत्मा । बृह. 1.4.16

[25] आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेंव तु ।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेंव च ।। कठ. उप. 1.3.3

[26] मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ।। कठ. उप. 2.1.11

[27] मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धनमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ।। अमृत. उप. 6.34

[28] भारतीय दर्शन की रूपरेखा, एम. हिरियन्ना, पृ. 67

[29] विञ्ञाणं चित्त मनोति अत्थतो एकं । विसुद्धिमग्ग, 24.82

[30] चित्तं मनश्च विज्ञानं संज्ञा विकल्पवर्जिता:। विकल्पधर्मतां प्राप्ता: श्रावका न जिनात्मजा:। लंकावतारसूत्र, 3.40

विज्ञान कहलाता है।"[31] परन्तु जब इसको चित्त धातु कहा जाता है तब यह मन की अपेक्षा अधिक व्यापक अर्थ में लिया जाता है।

बौद्ध दार्शनिक परम्परा में वस्तु की उपलब्धि कराना ही चित्त है। यहाँ चित्त, मन, प्रज्ञा तथा स्मृति आदि में संज्ञा, स्मरण, लक्षण, अनुसरण, अभिनिरूपण आदि विशेषों या विकल्पों का ग्रहण उत्तरोत्तर क्रम से होता है।[32] यह आलम्बन तीन प्रकार का होता है- १. संज्ञा द्वारा जानना २. विज्ञान द्वारा जानना ३. प्रज्ञा द्वारा जानना। चित्त सत्य एवं असत्य मिश्रित ज्ञान को संज्ञा द्वारा जानता है, किसी एक विषय के आलम्बन को ग्रहणकर यह विज्ञान द्वारा जानता है और सत्य ज्ञान को यह प्रज्ञा के द्वारा जानता है। यहाँ इसका इन्द्रियों की अपेक्षा अधिक व्यापत्व सिद्ध होता है।[33]

सभी इन्द्रिय-विषयों के गुण, धर्मादि को ग्रहण करने के कारण चित्त को प्रधान तत्त्व कहा गया है। अभिधर्मप्रदीप ग्रन्थ में इसके सन्दर्भ में कहा गया है - सभी गुणधर्मादि में चित्त ही प्रधान तत्त्व होता है क्योंकि यह वस्तुमात्र के ग्रहण आदि और सभी प्रकार की शुद्धि तथा संकर का निमित्त है।[34] त्रिशिकाविज्ञप्तिकारिका में मन के सन्दर्भ में कहा गया है कि जब यह इन्द्रियों की सहायता से विषय आलम्बनों को ग्रहण करता है तब यह मन कहलाता है और प्राप्त आलम्बनों पर जब यह मनन करता है, तब यह विज्ञान कहलाता है।[35] विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि में इसके सन्दर्भ में कहा है - "मनुत इति मन:" अर्थात् विषयों पर मनन करने वाला मन कहलाता है।

न्याय- वैशेषिक दर्शन में मन

न्याय-वैशेषिक दोनों तन्त्रों में मन सम्बन्धी अवधारणा लगभग एक जैसी ही है। दोनों ही तन्त्र समान रूप से मन को आत्मा से भिन्न स्वीकार करते हैं और इसके भौतिक स्वरूप को तर्क द्वारा सिद्ध करने का प्रयास करते है। वैशेषिक के अनुसार नवद्रव्य संकल्पना में मन अंतिम द्रव्य है[36], जिसकी सहायता से आत्मा सुख-दुःख अनुभव करता है।[37] मन अंतरेंद्रिय एवं अदृश्य है, जिसका ज्ञान अनुमान के सहारे होता है। जिस प्रकार बाह्य वस्तुओं को जानने के लिए बाह्य इन्द्रियों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सुख-दुःख आदि आंतरिक व्यापारों को जानने के लिए आंतरिक इन्द्रिय की आवश्यकता होती है, यही आंतरिक इन्द्रिय मन है। इस प्रकार मन आत्मा के लिए ज्ञान के यन्त्र के रूप में काम करता है।[38]

वैशेषिक दर्शन में आत्मा, इन्द्रिय एवं विषय के सन्निकर्ष से ज्ञान होने में मन हेतु है।[39] यह मन गुणक्रियाधर्मी होने से द्रव्य तथा परमाणुरूप होने से नित्य है।[40] जब मन कर्म आरम्भ नहीं करता तब वह आत्ममात्रनिष्ठ या स्वरूपस्थ हो जाता है तथा उस अवस्था में सभी दुखों का नाश हो जाता है। वही अवस्था सम्यक् योग है।[41] मन अणु स्वरूप है क्योंकि वह सभी द्रव्यों से एकसाथ संयुक्त नहीं है।[42] न्याय-

---

[31] चित्तमालयविज्ञानं मनो यन्मननात्मकम्। गृह्णाति विषयान् येन विज्ञानं हि तदुच्यते।। लंकावतारसूत्र, 102

[32] वस्तूपलब्धिमात्रं हि चित्तम्। तेनोपलब्धवस्तुनि संज्ञास्मरणे लक्षणानुस्मरणाभिनिरूपणादयो विशेषा: संज्ञाप्रज्ञास्मृत्यादिभिर्गृह्यन्त आदिग्रहणाद् अत्रात्माभिनिवेशाद् राजस्थानीयत्वाच्च। अभिधर्मप्रदीप, 2.12

[33] विसुद्धिमग्ग, पृ. 304-305

[34] चित्तं प्रधानमेंतेषां वस्तुमात्रग्रहादिभि:। बीजं चैतत् प्रवृत्तीनां शुद्धिसंकरयोरपि॥ अभिधर्मप्रदीप, 2.12

[35] तदालम्बं मनो नाम विज्ञानं मननात्मकमिति। त्रिंशिकाविज्ञप्तिकारिका, कारिका, 5

[36] पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि। वैशे. सू. 1.1.5

[37] आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ. 230

[38] योग और मानसिक स्वास्थ्य, पृ. 5

[39] आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोभावश्च मनसो लिङ्गम् । वैशे. सू. 3.2.1

[40] तस्य द्रव्यत्व-नित्यत्वे वायुना व्याख्याते । वैशे. सू. 3.2.2

[41] तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि शरीरस्थ दुःखाभावः संयोग । वैशे. सू. 5.2.16

[42] तदभावादणु मनः । वैशे. सू. 7.1.21

वैशेषिक दोनों मन को परमाणु स्वरूप मानते हैं।[43] मन चेतन नहीं है क्योकि यह जार के समान चेतना का एक उपकरण मात्र है। मन निरवयव और एक है। अतः एक समय एक ही प्रकार की अनुभूति संभव है क्योकि उस अनुभव को पाने वाला मन अविभाज्य है। ये दोनों दर्शन एक व्यक्ति में एक ही मन की सत्ता को मानते है। इस प्रकार न्याय और वैशेषिक के मत में मन भौतिक, आणविक, एक और अचेतन है। यह आंतरिक इन्द्रिय के रूप में आत्मा के ज्ञान का यन्त्र है।

सांख्य-योग में मन

सांख्य और योग दर्शन में मन की उत्पत्ति अहंकार अथवा अस्मिता के परिणाम से मानी गयी है। सांख्य दर्शन के अनुसार मन प्रधान इन्द्रिय है और अन्य दस इन्द्रियाँ इसकी शक्तियाँ है। यह ग्यारहवी इन्द्रिय है।[44] किन्तु इसकी प्रकृति उभयात्मक है।[45] एक ओर यह ज्ञानेन्द्रिय की तरह ज्ञान का साधन है क्योकि यहाँ सुख-दुःख की अनुभूति करता है और दूसरी ओर यह ज्ञान के कारण के रूप में कर्मेन्द्रिय की तरह काम करता है। बिना मन के संचालन के इन्द्रियाँ भी काम नहीं करती। मन के जुड़ने पर ही दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ अपना काम करती हैं। अन्य इन्द्रियों की तरह यह सूक्ष्म प्रकृति के व्यक्त अंश अंहकार से उद्भुत होता है।[46] इस प्रकार सांख्यदर्शन में मन की सत्ता भौतिक है, जो की चेतन स्वरूप आत्मा से सर्वथा भिन्न है।

योग दर्शन में, मन का स्वरूप चित्त के रूप में बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से स्पष्ट किया गया है। प्राकृत होने के कारण यह जङ और प्रतिक्षण परिणामी है।[47] सत्व, रजस् व तमस् तीनों के आधार यह विविध रूपों में क्रियाशील रहता है। तमस् प्रधान मन जङता, अज्ञान, तंद्रा, निद्रा की ओर ले जाता है। रजस प्रधान मन का स्वरूप सक्रिय अस्थिर और चंचल है। सत्व प्रधान मन ज्ञान, आनंद और शान्ति की और ले जाता है।[48] योग दर्शन के अनुसार क्षिप्त, मुढ, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरुद्ध मन की पाँच अवस्थायें हैं । इनमें प्रथम तीन समाधि के लिए नितान्त अनुपयोगी है। परन्तु अंतिम दोनों भूमियो में योग का उदय होता है।[49] मन की पांच प्रकार की वृतियाँ है - प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।[50] पतञ्जलि के अनुसार चित्त की वृतियो का निरोध ही योग है।[51] योग में मन/चित्त से सम्बन्धित अधिक विवेचनात्मक अध्ययन अग्रिम अध्यायों में किया जायेगा।

मीमांसा-वेदान्त दर्शन में मन

मीमांसा दर्शन के अनुसार मन एक इन्द्रिय है, अतः सुखादि का प्रत्यक्ष बोध होता है जिन्हें मनःसंयुक्त आत्मा उपलब्ध करता है। इस प्रकार मन अन्तरिन्द्रियरूप अन्तःकरण है जो सामान्यतः सभी प्रत्यक्षों का और विशेषतः सुखादि के आन्तरिक बोध का असाधारण है।[52]

अद्वेत वेदान्त की आदि परम्परा में आत्मा या ब्रह्म ही परम सत्य है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी सत्य नहीं है। इस प्रकार मन की सत्ता भ्रम मात्र है। जो अज्ञान या भ्रम के कारण उत्पन्न हुई है।[53] शंकराचार्य के अनुसार मन अन्तःकरण का ही रूप है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया जाने वाला अन्तःकरण ही वृत्तिभेद से सुख-दुःख, बन्धन तथा मोक्ष का कारण है।[54] वेदान्त दर्शन में मन का

---

[43] ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः। न्या. सू. 3.2.59, प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञानायोगपद्याच्चैकम्। वैशे. सू. 3.2.3

[44] कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेंकादशकम्। सां. सू. 2.9

[45] उभयात्मकमत्र मनः। सां. सू. 2.26, उभयात्मकमत्र मनः संकल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात् । सां का. 27

[46] एकादशपञ्चतन्मात्रं तत्कार्यम् । सां.सू. 2.17

[47] आचार्य बलदेव उपाध्याय, भरतीय दर्शन, पृ. 263

[48] S. Buddhananda, Mind and its Control, p. 25

[49] आचार्य बलदेव उपाध्याय, भरतीय दर्शन, पृ. 263

[50] प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः। यो. सू. 1.6

[51] योगश्चित्तवृत्तिः निरोधः। यो. सू. 1.2

[52] मनसस्त्विन्द्रियत्वेन प्रत्यक्षा धीः सुखादिषु ।
मनसा सम्प्रयुक्तो हि तान्यात्मा प्रतिपद्यते ॥ श्लोकवार्तिक-प्रत्यक्ष खण्ड, 80

[53] TMP Mahadevan Gaudapada, A Study in Early advaita, p. 151

[54] वृत्तिभेदेन मनोबुद्ध्यहंकारचित्तव्यपदेशभाजनमन्तः करणमेव सुख-दुःखबन्धमोक्षादिसर्वव्यवहारकारणं व्यवहारमात्रस्यैव

स्थान हृदय को माना गया है।[55] शंकर के अनुसार मन सूक्ष्म और सीमित है क्योंकि मृत्यु के समय जब मन शरीर त्यागता है उस समय मन अदृश्य होता है। वेदान्त दर्शन में मन की सत्ता भौतिक[56] तथा पञ्चवृत्त्यात्मक स्वीकार की गयी है, जिसके सही ज्ञान, विवेक कल्पना, निद्रा और स्मृति प्रमुख पाँच रूप है।[57] अतः वेदान्त में मन या अन्तकरण चेतना की अवस्थाओं की समग्रता का नाम है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विश्लेषण के उपरान्त यह तथ्य निष्कृष्ट होता है कि भारतीय दर्शन में मन का बहुत ही स्पष्ट एवं सांगोपांग विवेचन उपलब्ध होता है। यहाँ उल्लेखित मन का स्वरूप शरीर और आत्मा दोनों से भिन्न है तथा इसका स्वरूप मूलतः भौतिक और अचेतन है, सभी परस्पर अंतःसम्बंधित है, किन्तु आत्मा की सक्रिय व चेतन सत्ता के कारण यह सक्रिय व चेतनवत् दृष्टिगोचर होता है। इसका अस्तित्त्व सूक्ष्म तथा अतीन्द्रिय व इन्द्रियों के अधिष्टाता के रूप में है तथा आत्मा के लिए ज्ञान के उपकरण के रूप में कार्य करता है।

स्रोत

1. वैदिक मनोविज्ञान, पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपूर (भदोहि),
2. तृतीय संस्करण-१९९८
3. तर्कभाषा केशवमिश्र, गजानन्दशास्त्री मुसलगाँवकरकृत हिन्दी व्याख्या सहित, वाराणसी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पुनर्मुद्रण, १९९५
4. तर्कसंग्रह अन्नम्भट्ट, दयानन्दभार्गवकृत हिन्दी व्याखया सहित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
5. सांख्यदर्शनम् रामनाथ झा, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, २००८
6. सांख्यकारिका रामकृष्ण, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, १९७७
7. मीमांसाश्लोकवार्तिक डाँ काशीनाथ मिश्र कृत, कामेश्वरसिंहदरभंगासंस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा बिहार २००१
8. मीमांसादर्शनम् डाँ मण्डनमिश्र, आचार्य पट्टाभिरामशास्त्री विद्यासागर, श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रिय-संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, १९८३
9. सर्वदर्शनसंग्रह माघावाचार्यकृतः उमाशंकर शर्मा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००६
10. न्यायसर्शनम् उदयवीरशास्त्री, विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, २००३
11. सांख्यतत्त्वकौमुदी-प्रभा डाँ आद्याप्रसाद मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद, २००६
12. ईशादि नौ उपनिषद् गीताप्रेस गोरखपुर।

अन्तःकरणवृत्तिविशेष जन्यत्वादित्यद्वैतवेदान्तिनः प्राहुः। ब्र. सू. शा. भा. 2.4.17

[55] मन उपाधिकश्च जीवः मनश्च प्रायेण हृदये प्रतिष्ठितम्। ब्र.सू. शा. भा. 2.3.14

[56] भवति च भौतिकत्व लिङ्गम् करणानाम् अन्नमयं.....। ब्र. सू. शा. भा. 2.3.25

[57] पञ्चवृत्तिर्मनोवद्व्यपदिश्यते। ब्र. सू. 2.4.12